

चतुर्थ सोपान – किष्किंधा काण्ड

ओम तत्सदात्मने नमः

दो.- मुक्त जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर।

जहं बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥

यह काया ही काशी है। इसी मानव शरीर में मुक्ति का साधन होता है। इसी में मुक्ति का जन्म होता है। इसलिए इसको मोक्ष का द्वार कहा गया है-

‘साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।’

इस मानव शरीर में ही परमात्मा को पाया जा सकता है। इसलिए इस नर-काया रूपी काशी की महिमा बहुत बड़ी है-

‘नर तन सम नहि कउनिउ देही।’ जीव चराचर जाचत जेही॥

यही वह बेड़ा है, जो जीव को संसार-समुद्र से पार ले जाता है।

‘नर तन भववारिधि कहुं बेरो।’

यह मानव शरीर बुद्धि-विवेक से सम्पन्न होने से ज्ञान की खदान है। ज्ञान का भंडार है।

‘मानुष तन गुन ज्ञान निधाना।’

जैसे हीरे की खदान से हीरा निकाला जाता है, वैसे ही यह मानव देह ज्ञान की खदान है। इसमें साधना रूप खनन करके, तत्त्व ज्ञान प्राप्त किया जाता है। और अघ हानिकर भी है। पूर्व के अनेक जन्मों में, विविध योनियों में जो पाप कर्म इस जीव के द्वारा किए गए, उनको पुण्य कर्मों के द्वारा काटने का अवसर इस मानव योनि में ही मिलता है। जप-तप, नियम-संयम, साधन-भजन, इस शरीर के द्वारा करके अघ की हानि की जाती है। ऐसी यह काया-काशी है। इसमें शंकर और पार्वती निवास करते हैं। इस स्थूल शरीर में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर का है। वह शंकर इस कायारूपी काशी के अधिष्ठाता हैं। उस सत्य स्वरूप शंकर की प्रशक्ति, प्रेम रूपी पार्वती इसी में है। यह जो सत्रह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है, इसका अधिष्ठाता ब्रह्मा, और कारण शरीर का अधिष्ठाता विष्णु है। ये सब यहीं हैं। और बाहर कहीं इनके मकान नहीं बनें हैं, आकाश में। इस बात को दृढ़ निश्चय पूर्वक धारण कर लो, तब फिर साधना का सही रास्ता समझ में आ सकता है। फिर उस पर चलो, तब ठीक

रहेगा। अभी तो भगवान को ऊपर वाला मानते हैं, कि ऊपर बैठा है कहीं बैकुंठ में। ऊपर कुछ नहीं है, सब कुछ यहीं है, अपने पास। इसी शरीर में।

अगर मान, लिया जाय कि शंकर जी काशी में रहते हैं या कैलाश में रहते हैं। तो जो गरीब आदमी है, भला आदमी और पैसा नहीं है उसके पास, तो वह काशी नहीं जा पाएगा। न शंकर जी को देख पाएगा कभी। और जो पैसे वाला है, बेईमान आदमी है—गाड़ी में, कार में, झट दर्शन कर लेगा। तो क्या भगवान पैसे वालों के लिए है? इसलिए यह बाहर वाली काशी नकल है। असल काशी है काया। यही विश्वास रूपी विश्वनाथ की पुरी है। इसी में शंकर से भेंट होती है। इसलिए साधना करने वालों को चाहिए, कि पहले अपना ठीका सही करें। सही ठिकाना तय कर लें, तो अच्छा रहता है। हमारे विचार से यह मानव शरीर ही काशी है। इसी को अवध कहा गया है। इसी में परमात्मा प्रादुर्भूत होता है; इसलिए इसकी महिमा बहुत बड़ी है। इसी मानव देह के अन्दर इसी में राम अवतरित होता है। तो देखिए, अवधि कहते हैं समय को। वह समय या अवसर, जो हमें मानव तन के रूप में भगवान ने महान कृपा करके दिया है। इस अवध में भगवान का प्रादुर्भाव होता है। यह जन्म भूमि है भगवान की—

‘जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि सरजू बह पावनि।।’

यह श्वासा ही सरजू है, जो निरंतर बह रही है। इसमें जो मज्जन कर ले, श्वास जप के द्वारा मन को धो डाले, पवित्र कर ले। तो फिर भगवान को पा सकता है। ऐसे इसे समझना पड़ेगा, अगर कुछ करना है तो। अभी क्या है कि काशी, अयोध्या का नाम आते ही मन दौड़ जाता है बनारस, और उसके आगे अयोध्या। इस तरह बाहर भागने से साधन-भजन का सही रास्ता छूट जाता है। नकल को पकड़ लिया जाता है, असल छूट जाता है। भूल-भटक जाता है। इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं—सो काशी सेइय कस न। उस काशी को, काया-काशी को क्यों नहीं पकड़ते, जिसके जरिए साधन-भजन करके मुक्ति पाई जाती है। इस बाहर की काशी में क्या रखा है ? वहाँ जाने से मुक्ति नहीं मिला करती। मुक्त होने के लिए शरीर से साधन-भजन किया जाता है। बाहर से तो यह माया क्षेत्र है—‘गो गोचर जहं लागि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।’ माया ही माया है, वहाँ कहां मिलेगा भगवान ? चाहे काशी हो या काबा, सब माया क्षेत्र है। और इस काया में अगर साधन बन जाय, मन अन्तर्मुख होकर ईश्वर में लग जाय, निर्मलता आ जाय, तो अपने में और सर्वत्र, ईश्वर मय हो जाय। फिर ‘सीय राममय सब जग’ हो जायगा। इस ढंग से अर्थ माना जायगा तो सबके

लिए कल्याणकारी होगा। यह जो हम देखते हैं, चलते हैं, व्यवहार करते हैं, वाह्य जगत में, यह सब माया ही तो है। अब इसी के अपोजिट है ईश्वर। यह हमारा मन ही बाहर सब देख रहा है। यदि यही मन उलट कर अपने अन्दर देखने लगे, तो काम बन जाय। हृदय में इष्ट का ध्यान करे। ध्येय, ध्याता और ध्यान को एक कर दे, आकाशवत् हो जाय। ऐसा ही आकाशवत् निरवयव, व्यापक, शान्त और शुद्ध स्वरूप है, परमात्मा का।

‘नील सरोरुह नील मणि, नील नीर धर श्याम।

लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सतकाम।।’

जैसे नीला आकाश-अनन्त, अछेद्य, अभेद्य। ऐसा है वह। इसलिए राम, कृष्ण, विष्णु, सबका रंग आकाश जैसा नीला दिखाया जाता है। आदमी तो नीले रंग का होता नहीं। भगवान को आदमी के आकार का दिखाया जाता है, लेकिन रंग नीला दिखाते हैं। क्योंकि परमात्मा का स्वरूप आकाशवत् सूक्ष्म (बारीक), व्यापक और निर्लेप है तो जब आकाशवत् स्थिति मिल जाती है, तो फिर दुनिया बदल जाती है। साधना का यही लक्ष्य है, कि यह अवस्था आए। यह मन की एकाग्रता से आती है। लेकिन मन को रोकनेकी बात पर सब यही कहते हैं, कि मन तो रुकता ही नहीं, बड़ा चंचल है। इसका कारण है कि अनेक चीजों से मन का लगाव हो चुका है, पहले से। स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति, दुनियादारी में अभ्यास है उसका, उन्हीं में भागता है। इंद्रियों के साथ बिषयों में चला जाता है। इसे उधर से हटाना है, ईश्वर में लगाना है। इसके लिए विषयों से वैराग्य और जप-ध्यान का अभ्यास, यह करना पड़ेगा -

‘अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ग्रह्यते।’

मेहनत करनी पड़ेगी, दृढ़ता लानी पड़ेगी, कि होगा कैसे नहीं। अब इस माया को देखने वाले मन को हमें नहीं रखना है। हमें तो परमात्मा को देखने वाला मन रखना है। इसलिए आधार बदल देना है। पहले माया आधार थी, अब ईश्वर आधार हो गया। फिर धीरे-धीरे मन मान जाता है।

यह काम करना ही है। अगर यह काम नहीं हुआ, तो समझो तुमने सब कुछ करके भी कुछ नहीं किया। इसलिए इसमें सीधा सा काम है, कि अपना ध्येय निश्चित करें। गुरु ने बताया कि वह दूर जो लाइट जल रही है, वहाँ तुम्हें जाना है। बस अब वह लक्ष्य दिमाग से, आंख से हटे न। तुम्हें कुछ नहीं देखना, बस लक्ष्य को देखना है, उसी को पाना है। अगर ऐसा सही लक्ष्य-निर्धारण हो गया और उसके लिए जिद करके चल पड़े, तो गंतव्य अवश्य मिल जाता है। जब अपना काम पूरा हो जाय, तो

भगवान के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ, प्रार्थना करो, कि भगवान ! अब आप मेरी परीक्षा ले लीजिए। जब भगवान की कसौटी में खरे उतरोगे, तो डिग्री दे देंगे भगवान। अब तुम परीक्षित बन गए, तो वह जो सुख का देने वाला भगवान है, वह शुकदेव तुम्हें भागवत (भक्त-साधक) की सब नीति-रीति बताने लगेगा अन्दर ही अन्दर। उसी में एडजस्ट होते जाओ, और मस्ती काटो। भगवान के ऊपर छोड़ दो सब, तुम उसके हाथ की कठपुतली बन जाओ। ध्यान रूप धागे से, उनके इंगित रूपी उंगली में बांध लो अपने आपको। और उसी के इशारे पर नाचो। अब उसी के हाथों का उपकरण (यंत्र) बन जाना है-किसी दूसरे के हाथों का नहीं बनना है। बहुत बन चुके दूसरे के हाथों के यंत्र। यदि इतना करते बन गया, तो फिर भगवान गोद में उठा लेते हैं। जीवन धन्य-धन्य हो जाता है।

इसलिए साधना में तत्पर हुए साधक के लिए काया ही काशी है, मन ही मथुरा है। शरीर से सेवा, और मन से भजन-ध्यान करना है। खाली बनारस में रहने से काम नहीं चलेगा। कहते हैं -

‘कोटि कल्प काशी बसै, मथुरा कल्प पचास ।

एक निमिष सरजू बसै, तुलै न तुलसी दास ।।’

इसका मतलब है कि शरीर स्तर से करोड़ों जन्म तक स्थूल साधना करते रहने से जो परिणाम आता है, मन के स्तर से सूक्ष्म साधना करने से वही परिणाम सौ-पचास जन्मों में मिल जाता है और अगर श्वासा रूपी सरजू में क्षण भर के लिए अवगाहन कर ले, श्वास - जप में तन्मय हो जाय तो जो परिणाम मिलता है उसकी कोई तुलना ही नहीं है। इस तरह से यह अनुभव सिद्ध संत महापुरुषों की उक्तियां हैं,

साधक को इन्हें अमल में ले लेना चाहिए।’

सो. - जरत सकल सुर वृंद, विषम गरल जेहि पान किय।

तेहि न भजसि मन मंद, को कृपाल संकर सरिस।।

इस दुर्लभ मानव शरीर को पाकर हम संसार उन्मुख हो गये हैं, गलत रास्ते पर चल रहे हैं। यह माया है नहीं, तो भी इसे सही मान रहे हैं। सीपी की चमक को चांदी समझ बैठे हैं, और भागे चले जा रहे हैं, इसके झूठे आकर्षण में। इन इंद्रियों में बैठे हुए देवताओं को विषय रूप विष देते जा रहे हैं। इस विषय रूपी विषम गरल में इस शरीर के अन्दर जो देवता हैं-ये अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ रूप सुरबृंद-जले जा रहे हैं। तो इस जहर में जलने से इन्हें बचाता है, सत्य स्वरूप शंकर। जो इस काया

काशी का अधिष्ठाता है। जब हम असत्य संसार की उन्मुखता छोड़कर सत्य उन्मुख हो जाते हैं। सत्य की शरण में मन, बचन, कर्म से आ जाते हैं, तो यही सत्य-शंकर इस गरल को पान कर जाता है। फिर ये सारे देवता जो इंद्रियादिक गोलकों में बैठे हैं, विषय रूप विष से बच जाते हैं। जब साधक सत्य को पकड़ लेगा, मन-इंद्रियों सहित उसके अन्तःकरण में ईश्वर छा जाता है, तब संसार के विषयों से छुटकारा मिल जाता है। अन्तःकरण में शान्ति आ जाती है। मन और इंद्रियों की अशान्ति समाप्त हो जाती है। अब विषय में प्रवृत्ति नहीं होती, ईश्वर में होती है। इस तरह से तीनों कालों में अबाधित एकरस सत्य तत्व की शरण पकड़ ली जाती है, तभी बच सकते हैं। इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं, कि अरे मूर्खमन! उस शंकर को अर्थात् कल्याण करने वाले सत्य स्वरूप परमेश्वर को, क्यों नहीं भजते? उसी का भजन करो। इसी में कल्याण है।

आगे चले बहुरि रघुराई। ऋष्यमूक पर्वत नियराई॥

**तहं रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देख अतुल बल
सीवा॥**

‘तो इस किष्किंघा काण्ड की शुरुआत में काया रूपी काशी की महिमा बताया और फिर इसके अधिष्ठाता शंकर की स्तुति कर लिया। अब यह कथा आगे बढ़ेगी – साधक की साधना आगे चलेगी। धीरे-धीरे प्रगति करते करते यहां तक पहुंच गया साधक पहले भगवान को अवतरित किया अपने अन्दर भक्ति रूप कौशल्या के द्वारा, फिर विश्वास आ गया तो ताड़का समाप्त हुई यह ताड़का जब मर गई तो जानकारी रूपी जज्ञ पूरा किया, फिर योग साधना में आरुढ़ होकर सीता-शक्ति प्राप्त किया। जब क्षमता आ गई तो सूक्ष्म स्तर की साधना में प्रवेश हो गया और चित्त की एकाग्रता से अत्रि शरभंग, सुतीक्ष्ण, कुंभज आदि ऋषियों के रूप में एक-एक करके बड़ी-बड़ी डिग्रीयाँ मिल गईं। और इस शरीर रूपी पंचवटी में निवास हो गया। अनेक विध्वन-बाधाओं से संघर्ष करता हुआ साधक साधन-पथ पर आगे ही आगे बढ़ता जाता है। विपत्तियों में संतुष्ट रहता है, ईश्वरीय प्रेम में सराबोर रहने से मन में मस्त रहता है और अपने ज्ञान और विवेक को लेकर आगे बढ़ता जाता है। निवृत्ति मार्ग की साधना में प्रगति करता जा रहा है और अब उस प्वाइंट पर पहुँच गया है जहां हनुमान से भेंट हो जायगी और फिर तो उसके सब काम बनते चले जाएंगे और साधना के लक्ष्य को पा जाएगा।

साधक को चाहिए कि आगे ही आगे बढ़ता चले। उस मार्ग पर जो रघुवंशियों का मार्ग है, निवृत्ति मार्ग। रघुवंश या सूर्यवंश उन महात्माओं की परंपरा का नाम है, जो

निवृत्ति मार्ग वाले होते हैं। रघुवंश का मतलब हम ऐसा मानते हैं। प्रारम्भ से लेकर अब तक जितने महात्मा हुए निवृत्ति मार्ग वाले, या आगे भविष्य में होंगे, वे सब इसी परम्परा में आते हैं। निवृत्ति मार्ग का मतलब है-त्याग का मार्ग। जो अनपेक्ष भाव से साधना करते हैं, साधन-भजन करके कुछ डिमांड नहीं करते, बल्कि जो ऋद्धि-सिद्धि आती है, उनका भी त्याग करके आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं और निर्लेप परमात्मा पद में स्थित हो जाते हैं। वशिष्ठ गुरु हैं इस वंश के। वशिष्ठ है ज्ञान। तो निवृत्ति मार्ग में ज्ञान का आधार ले कर चलते हैं। सत्य ब्रती होते हैं। सत्य जो परमात्मा है उसके लिए सब कुछ त्यागने वाले और साधन पथ पर अडिग रहने वाले होते हैं। साधना रूपी संग्राम में पैर कभी पीछे नहीं हटाते। ऐसी ये विशेषताएं हैं इस रघुवंश की, इस निवृत्ति मार्ग की। रघु शब्द का मूल अर्थ होता है-कि जो आगे बढ़ जाता है। सबको पराभूत करके आगे निकल जाता है। सफलता प्राप्त कर लेता है। साधक जब इस प्रकार से साधना में आगे बढ़ता है, तो ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचता है। साधक की सुरति रूपी सुग्रीव का वहीं निवास है। ऋष्यमूक अर्थात् जिसके विषय में, ऋषि मनीषियों की वाणी भी मौन हो जाती है, वह निरवयव, शान्त शून्यवत स्थिति। आत्मरस में लीन आप्त पुरुषों द्वारा अनुभूत आकाशवत् अवस्था, उसी को पाना है, सुरति लगी हुई है। वह स्थिति अब करीब आ गई है। साधक की सुरति उसी में लगी रहती है। अब उसे पकड़ पाने के बिल्कुल करीब है। उसे आभास मिलने लगता है, कि कोई महान क्षमता मेरे पास आने वाली है। जिसमें बड़ा आकर्षण है, जो मेरे जीवन को संवारने वाली है।

अति सभीत कह सुनु हनुमान।

पुरुष जुगुल बल रूप निधाना॥

धरि वटु रूप देखु तैं जाई।

कहेसु जानि जिय सयन बुझाई॥

हनुमान ही पता लगाएगा। हनन करे जो मान का-वह है हनुमान। साधक के अन्दर अभिमान रहित अवस्था ही हनुमान है। उसे त्याग कह सकते हैं वैराग्य कह सकते हैं। साधक को जब यह स्थिति मिल जाती है, तो फिर उसकी साधना सफल होती है। उसका रैपिड प्रमोशन होने लगता है। और अगर अभिमान बना रहे, कि मैंने यह कर लिया, मेरे में इतनी क्षमता आ गई। अब मैं यह करूंगा। तो यह महान बाधक है साधना में। इसलिए साधक हर अच्छाई का श्रेय भगवान को देता है, बुराई को अपनी मानता है। यह सही तरीका है। रामायण में देखो तो हर जगह

हनुमान के बिना कोई काम ही नहीं होता। तो इसका मतलब है कि अहंकार का त्याग होना, बहुत बड़ी डिग्री है। जहाँ कहीं, कुछ पता लगाने की बात आती है, तो हनुमान को ही भेजते हैं। इसलिए हनुमान बन्दर नहीं है- हनुमान कहते हैं वैराग्य को। विनय पत्रिका में आया है - 'प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय।' वैराग्य हमारे मानस का, अन्तर्जगत का, एक ताकतवर अवयव है। अभिमान का त्याग जिसने कर लिया, वह सब कर लेगा। विनम्रभाव से साधना की सारी युक्तियाँ जान लेगा। भगवान पर निर्भरता लिए रहने से राम काज में ही लगा रहेगा और सफल होगा।

अब हनुमान का नाम आया। कथानक में एक नया मोड़ आ गया। अब रोना-पीटना और हीन भावनाएँ नहीं रह गईं। त्याग आ गया, वैराग्य आ गया। अनुसंधान में जुटने का तरीका बनने लगा। विवेक रूप लक्ष्मण निरंतर साथ दे रहा है। अब आ गया त्याग-वैराग्य रूप हनुमान। समर्पण जब साधक का हो जाता है, भगवान पर निर्भरता आ जाती है, अपने बल को भुलाकर, ईश्वरीय आश्रय ले लिया जाता है, तब समझो कि अब साधक की दुनिया बदलने वाली है।

पठए बालि होंहि मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला।

बिप्र रूप धरि कपि तहं गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

इस रामायण में जो बाहर की कहानी है, वह तो सभी जानते हैं। लेकिन जो बातें साधक के मानस जगत में घटित होती हैं- साधन प्रक्रिया की आन्तरिक सूक्ष्म गतिविधियाँ - उनका कम्पोजीशन, गोस्वामी जी ने कितने सुन्दर ढंग से किया है, यह समझने की जरूरत है। यहाँ सुग्रीव ने भेजा हनुमान को, यह पता लगाने के लिए कि ये जो दो आदमी, बल और रूप के समुद्र जैसे हैं, ये कौन हैं? कहीं बालि के भेजे हुए तो नहीं हैं? तो हनुमान बटु के रूप में, जिज्ञासु के रूप में जाते हैं, और उनसे अपना चिर परिचित संबंध निकाल लेते हैं।

तो यह प्रक्रिया साधक के अन्तःकरण में चल रही है। कोई साधक जब ईश्वर के भजन में लगेगा, तो विचार करो कि भजन कैसे होता है? भजन तो ईश्वर कराता है। ईश्वर की तरफ से साधक के अन्तःकरण में कुछ ऐसे तत्व तैयार होते हैं, जो उसे खींचकर ईश्वर की ओर ले जाते हैं। शुभेच्छा, सुविचारणा से शुरुआत होती है। फिर ईश्वर में मन लगने लगा, संसार से हटने लगा। प्रगति होने लगी, त्याग-वैराग्य का भाव आया। सुरति संसारी कर्मों से हटकर भगवान में लगने लगी। तो जब संसार से वैराग्य हो जाय, विषयों से वैराग्य हो जाय, राग का त्याग हो जाय, अभिमान का त्याग हो जाय-तो इसे कहते हैं हनुमान। इसमें बहुत बड़ी क्षमता है।

यह वैराग्य ही ज्ञान स्वरूप राम को और विवेक रूप लक्ष्मण को अपनी पीठ पर लादकर ले आता है। मतलब यह है कि साधक के अन्तःकरण में त्याग-वैराग्य की पृष्ठभूमि जब बन जाती है, तब वह ज्ञान और विवेक को सही रूप में धारण कर पाता है। और इनके आने से सुरति रूपी सुग्रीव को बल मिल जाता है। ईश्वर पकड़ में आ जाता है। समझ काम करने लगती है। लगन तीव्र हो जाती है।

अब गहरी लगन के साथ भजन में लग गया। नाम में लग गया, रूप के ध्यान में लग गया, यम नियम आदि की प्रक्रियाएं सब करने लगा, तो जो अन्दर के दुर्गुण हैं-पहले से जमे हुए हैं, ये संसारी कर्मों के संकल्प-संस्कार और तमाम विकार-ये सब निकलने लगते हैं। बुराइयां डेरा उठाने लगती हैं। क्योंकि अच्छाइयों को धारण करने लगा है। एक ही पक्ष रहेगा। या तो सद्गुण रहेंगे तो दुर्गुण भाग जाएंगे। या फिर दुर्गुण रहेंगे तो सद्गुण चले जायेंगे। सद्गुण रहेंगे तो परमात्मा के आने में दिक्कत नहीं रहेगी। और अगर दुर्गुण रहेंगे तो परमात्मा नहीं आ पाता। वह फिर बहुत आगे की बात है, जब इन दोनों को विदा करना होगा।

तो यह जो हमारी सुरति है, वह सुग्रीव है। इसे कर्म रूपी बालि चैन नहीं लेने देता। क्या कहता है, सुग्रीव ?

‘ताके भय रघुवीर कृपाला।

सकल भुवन मैं फिरेउं बिहाला॥

‘इहां साप वस आवत नाही।

तदपि समीत रहउं मनमाहीं॥’

संसारी कर्म जाल में फंसा हुआ आदमी यहाँ वहाँ मारा-मारा फिर रहा है। दिन रात इस काम में उस काम में, सुरति लगाए, परेशान घूम रहा है। चैन नहीं है कहीं भी। तो एक ही जगह है-ऋष्यमूक पर्वत। ऋषियों द्वारा बताया गया ईश्वर तत्व। उसमें जब सुरति रहने लगती है, तो कर्म रूपी बालि से बचत रहती है। वैराग्य है अगर, तो ज्ञान-विवेक के द्वारा कर्म का अन्त कर दिया जायगा। फिर आगे की सब कहानी पूरी होती जायगी। लेकिन मुख्य बात तो यह है, कि यह जो हमारी सुरति संसार के कर्म जंजाल में फंसकर रह गई है, माया के जाल में, उससे छूटे कैसे ? तो इसका एक ही उपाय है कि हम अपने हृदय में भगवान को लाएं, संसार की ओर से मन को लौटाकर धीरे-धीरे ईश्वर में लगाना शुरू करें। सुरति जब भगवान से जुड़ जाती है, तब सारे काम बन जाते हैं। इस तरह से यह साधना का विषय प्रैक्टिकल है,

क्रिया में लेंगे तब समझ में आता है। थेवरी से इसमें काम नहीं चलेगा। करना पड़ेगा।

दो.- तब हनुमन्त उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।

पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥

हनुमान ने राम से सुग्रीव की मित्रता कराई। तो भगवान में मन तो तभी लगेगा, जब उधर संसार से मन हटे। संसार से मन हटने का नाम है वैराग्य। यह हनुमान रहेगा, तब सुरति इधर भगवान में लगेगी। यह सुग्रीव और राम की मित्रता का मतलब होता है। फिर जब दोस्ती हो गई, तो अन्दर ही अन्दर आदान-प्रदान होने लगा। एक दूसरे की मदद होने लगी। सुग्रीव ने सीता के कुछ गहने-कपड़े दिखाए और राम ने उन्हें पहिचाना, इस तरह खोज-खबर होने लगी।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥

सब प्रकार करिहउं सेवकाई। जेहि विधि मिलिहि जानकी आई॥

इसका मतलब है कि जब साधक को सही स्वरूप का ज्ञान मिल गया, और सुरति उसमें लग गई भली प्रकार से, तो अब अन्दर से ढाढ़स बनता है, कि जो क्षमता हमारी खो गई थी, फिर हमें मिल जाएगी। भगवान में सुरति लगी रहेगी, तो साधक में क्षमता जरूर आएगी। सीता अवश्य मिल जाएगी। आश्वासन मिल जाता है, अन्दर से भरोसा आ जाता है।

दो.- सखा बचन सुनि हरषे, कृपासिंधु बल सीव।

कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव॥

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥

साधक के मन में जब ईश्वरीय कर्तव्य के लिए, भजन-साधन करने के लिए तीव्र भावना बनती है। उधर के लिए सहयोगी विचार आने लगते हैं, तो उसके अन्दर स्वाभाविक प्रसन्नता आती है। सुग्रीव की बात पर राम के हर्षित होने का ऐसा मतलब है। अगर इसके विपरीत ऐसा आए कि यह तो बड़ा मुश्किल है, हम नहीं कर पाएंगे, तो फिर अन्दर से ग्लानि बनेगी। उदास-उदास रहेगा। इसलिए खूब प्रसन्न रहना चाहिए। आत्मविश्वास आ जाना चाहिए कि हम पीछे नहीं हटेंगे। होगा कैसे नहीं।

अब सुग्रीव अपनी कहानी बताता है, कि बालि मेरा भाई है। मेरा और उसका परस्पर बड़ा प्रेम था। तो अब अगर बाहर से इन बातों को लेंगे, तो तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। बंदरों का झगड़ा और बंदरों का प्रेम, जो भी होता है, तो क्या उसमें कोई

पंचायत करने जाता है ? या कि बन्दर से आदमी की मित्रता क्या उचित है ? ऐसे तर्क-वितर्क आएंगे। इसलिए साधक का काम है, कि इनकी एडजस्टिंग अपने अन्तःकरण में करे। और भजन में लगे। इन सब बातों में चित्त को उलझाना ठीक नहीं रहता साधक के लिए।

सुरति सुग्रीव है, कर्म बालि है। दोनो सहोदर भाई हैं। क्योंकि कर्म के संकल्प भी हमारे अन्दर से होते हैं, और सुरति भी उसी मन में होती है। बिना सुरति के कर्म नहीं हो सकता। ये दोनो एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते। बड़ा लगाव रहता है सुरति का कर्म के साथ, संसार क्षेत्र में। और जब पैट बदल गया किन्हीं कारणों से, और वह सुरति ईश्वर में लग गई। ईश्वरीय क्षेत्र में पहुँच गया। तो फिर संसारी कर्म परेशान नहीं कर पाते। सुरति को अपनी ओर खींच नहीं पाते हैं। भगवान कृपा कर देते हैं तो कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

सुनि सेवक दुख दीन दयाला। फरकि उठी द्वै भुजा विसाला॥

दो.- सुनु सुग्रीव मारिहउं, बालिहिं एकहिं बान।

ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरहिं प्राण॥

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

यहाँ राम कहते हैं कि बालि को एक ही बाण से मार दूंगा। अब वह ब्रह्मा व रुद्र की सहायता से भी बच नहीं सकता। इसका मतलब, कि यह बात कहने वाले के पास ब्रह्मा और शंकर से भी बड़ी अथारिटी है। अगर इनसे कमजोर होता, तो ऐसा न कहता। इसलिए कहा, क्योंकि इन दोनो की सीमा उससे छोटी है। ब्रह्मा और रुद्र-ये प्रान्तीय सरकारें हैं। और वह कहने वाला सेन्ट्रल गवर्नमेंट (केन्द्रीय सरकार) है। उसका स्तर बड़ा है। ये ब्रह्मा, शंकर उसके नीचे काम करते हैं-अपनी अपनी जगह पर। सेन्ट्रल का अधिकार स्टेट पर होता है, स्टेट का सेन्ट्रल के ऊपर अधिकार नहीं होता। तो यह जो राम है-‘रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः’-उसका स्तर सर्वोच्च है। वह सुप्रीम अथारिटी (सर्वोच्च सत्ता) है।

राम कहते हैं एक ही बाण से मार दूंगा बालि को, दूसरा बाण नहीं चलाना पड़ेगा। फिर उसे कोई बचा भी नहीं सकता। ऐसा कहा राम ने। तो इससे यह समझना चाहिए कि राम कोई ऐसी ताकत है, ऐसी क्षमता है, जो अपने आपको प्रकृति-पार

का महत्व देती है। प्रकृति का सार्वभौमिक अधिकारी है, सर्वेसर्वा है जो, वह परम पुरुष, परमात्मा है राम। इसलिए ऐसा वह कह सकता है।

और मित्र क्या है ? जो मैं से परे हो जाय, उसे मित्र कहते हैं। मैं जहाँ समाप्त हो जाय, फिर जो मिले उसका नाम मित्र है। कबीर बताते हैं कि मैं को मिटाने के बाद क्या मिलता है -

‘जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं।’

तो मैं को खतम करने से परमात्मा मिलता है। इसलिए मित्र यहाँ ईश्वर को कहा गया है। उस मित्र को अपना लिया जाय, उसके साथ स्थायी संबंध बना लिया जाय, उसमें स्थायित्व आ जाय, यह मित्रता है, इसे दोस्ती कहा जायगा। आध्यात्मिक दृष्टि से ऐसा अर्थ है इसका। और बाहर की मित्रता या, संसारी प्रेम का रीति रवैया अलग है। वहाँ तो - ‘सुर नर मुनि सब कै यह रीति। स्वारथ लाइ करहिं सब प्रीति।’ लौकिक क्षेत्र और अलौकिक क्षेत्र के कायदा कानून अलग-अलग हैं। यह ठीक से समझ लेना चाहिए। इसलिए वह मित्र मिले, उसको पाना है, जो सर्वश्रेष्ठ समझ है, सर्वोच्च पहुँच है। तब फिर यह कर्म रूपी बालि, जो चैन नहीं लेने देता, इसका अंत हो जायगा।

मित्र के रज समान दुख को पहाड़ के समान माने, और अपने भारी दुख को भी मामूली माने। तो ऐसा इस बाहर के समाज में होता नहीं। देखते हो, यहाँ जो भी आता है, अपना ही दुख सुनाता है। कोई अपने मित्र का दुख सुनाने नहीं आता। तो ये सब बातें साधना-क्षेत्र की हैं। इस तरह से यह जो बात राम कहते हैं, उसका मतलब ऐसा है, कि साधक को अपने कष्टों की चिंता न करना चाहिए, बल्कि वह जो मित्र है परमात्मा, उसी को देखे। उसमें गड़बड़ी न आने पाए, चाहे अपने को सब प्रकार से तकलीफ उठानी पड़े। अपना सब कुछ चला जाय, नष्ट हो जाय, तो भी वह न छूटने पाए।

‘शीश दिए जो हरि मिलै, तौ भी सस्ता जान।’

भगवान के लिए, अपने उस मित्र के लिए, सर्वस्व समर्पण कर सकें। भारी कष्टों में भी उसे अपनाए रहें। उससे सुरति हटे न। ऐसा मतलब है इसका। इसलिए जो हमारी एच्छिक भावनाएं हैं, कामनाएं हैं, उन्हें रज के समान मानें- ईश्वर के लिए उनका त्याग कर दें, उसके सुख के लिए अपने दुखों को रज के समान मानें। और अगर उस हमारे मित्र पर, ईश्वर के बीच में कोई विक्षेप आ जाय, बाधा आ जाय तो उसे ही अपनी भारी विपत्ति माना जाय पहाड़ जैसी। और उसे दूर किया जाय। कैसे

? कि ऐसे समय सौ गुना प्रेम किया जाय भगवान से। विपति काल कर सतगुन नेहा। तब मित्रता समझी जायगी। तब सच्ची भक्ति मानी जायेगी। अगर ऐसा नहीं कर सकते, तो गोस्वामी जी कहते हैं कि वे लोग मित्रता अर्थात् भगवान की भक्ति करते ही क्यों हैं।

जिन्ह के असि मति सहज न आई।

ते सठ कतहठि करहिं मिताई॥

तो ये बातें साधक के अन्दर आती हैं। उसके विचारों, भावनाओं और संकल्पों के दायरे की बातें हैं। सूक्ष्म जगत में, ये सब बाहर की तरह, वहाँ स्थूलरूप में कोई बैठा तो है नहीं। न सुग्रीव है, न राम। न वहाँ लक्ष्मण बैठा है, न हनुमान बैठा है। न कोई बन्दर बैठा है, न आदमी बैठा है। वहाँ तो सब निरवयव समाज है। विचारों, भावनाओं, संकल्पों को बुद्धि से, विवेक से, अनुभूतियों से पकड़ा जाता है। ध्यान से अन्दर की गतिविधियों को देखने का अभ्यास होना चाहिए। तब एडजस्टिंग आती है, और तब हम जो बता रहे हैं, वह समझ में आ सकता है। ऐसे सुरति-सुग्रीव है, कर्म-बालि है-इन्हें याद करने से काम नहीं चलेगा। जिसने उस दुनिया की सैर नहीं की है-जिसकी बात हम बता रहे हैं-वहाँ का तौर तरीका, नियम कानून जिसको नहीं पता है, उसे यह समझ में नहीं आएगा। इसके लिए बारीक बुद्धि चाहिए। अन्तर्मुखता आनी चाहिए। बाहर के चित्र बनते रहेंगे, तो फिर समझो अभी गड़बड़ी है। समझ नहीं पाओगे।

साधना के लिए लगन हो, त्याग वैराग्य हो साधक में, तो भगवान उसे अपने में मिला लेते हैं। उसकी सुरति जब परमात्मा में लीन हो जाती है। मूर्धा में जाकर प्रसुप्त हो जाती है। तब अभेद हो जाता है, भेद नहीं रह जाता - “कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा।” राम और सुग्रीव की मित्रता का यह मतलब है। उस अवस्था में - जब साधक अपने स्वरूप में स्थिति पा लेता है, तब-कर्म रूपी बालि की समाप्ति का पूरा निश्चय हो जाता है। क्योंकि स्वरूप ज्ञान के बाद कर्म निःशेष हो जाते हैं। - ‘कर्म कि होंहि सरूपहिं चीन्हें।’ इसलिए यही वह स्थिति है, जिसे पाने का हर साधक को प्रयत्न करना चाहिए।

दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढ्हाए॥

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधव इन्ह भइ परतीती॥

अभी जिस स्वरूप स्थिति की बात हम कर रहे थे, वह कब मिलती है, कि जब साधना पूरी हो जाती है। साधना की सात सीढ़ियां हैं- शुभेच्छा, सुविचारणा,

तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थ अभावनी और तुर्यगा। जो इन्हें पार कर ले, वह मार सकता है बालि को। कर्म को। यह शर्त है, कसौटी है। यही सात भूमिकाएं हैं सात ताड़ के पेड़।

सन्नु मित्र सुख दुख जग माहीं। माया कृत परमाख्य नाहीं॥

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम समन विषादा॥

तो अभी तो सुग्रीव बालि को मारने की बात कर रहा था। राम की कसौटी भी कर लिया। बालि को मार देंगे, यह विश्वास हो गया। अब क्या हो गया कि बालि परम हितैषी दिखाई पड़ने लगा। तो अध्यात्म अलग चीज है। और यह संसार की जो बातें हैं, ठीक इससे विपरीत हैं। गोस्वामी जी दोनों को लेकर चले हैं। उनकी कविता रूपी नदी के ये दोनों किनारे हैं।

‘लोक वेद मत मंजुल कूला।’

तो साधकों के लिए तो इसमें वेदमत की, अध्यात्म की बातें हैं, और संसारी लोगों के लिए लोकमत की बातें हैं। अध्यात्म एकत्व की बात करता है। वहाँ बर्फ को भी पानी करके देखा जाता है। बर्फ रूप संसार में भी परमात्मा रूपी पानी है- यह सत्य अध्यात्म का है। और इस दुनिया का काम दो के बिना चल नहीं सकता। यहाँ दुख-सुख, पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा ये दोनों रहते ही हैं। यह दुनिया दो से बनी है। यही द्वन्द्व संसार का सत्य है। यही इसका आधार है। लेकिन महात्मा मनीषियों ने समत्व की सिद्धि से संसार को आधारहीन सिद्धि कर दिया है। इसलिए असत्य है यह। सत्य है तो केवल परमात्मा। लेकिन लोगों की पहुँच वहाँ तक हो नहीं पाती, क्योंकि समत्व की स्थिति कठिन है। संसार में पहुँच है लोगों की। इसी में कुछ हँस लिए, कुछ रो लिए। कभी खा लिए, कभी भूख सहनकर लिए। बस इसी दो के झगड़े में पड़े रहते हैं। कोई बिरला ही भाग्यशाली पुरुष, जिसे सद्गु से भेंट हो गई, तो शायद बच जाय, नहीं तो कोई बच नहीं सकता। कबीर दास जी कहते हैं -

‘दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।’

तो भाई तुलसीदास महात्मा थे। उनकी यह रामायण उच्च कोटि की विचार धारा की तरफ संकेत करती है। यह साधारण अनर्थों को, अर्थ की तरफ नहीं लाना चाहती। यह इन अनर्थों को अर्थात् असद् अर्थों को बदलकर सद् अर्थ बनाना चाहती है। इसलिए इसमें सद्बुद्धि लगाने की जरूरत है।

सुग्रीव पहले तो खुश हुआ था कि राम बालि को मार डालेंगे। लेकिन अब बालि को परम हितैषी बताने लगा। तो साधक के अन्दर कई स्तर आते हैं, साधना के

दौरान। शुरू में तमाम बुराईयाँ भरी रहती हैं। उनमें ही मस्त रहता है। फिर जब उनके कारण परेशान होने लगा तो वही चीजें खराब लगने लगीं। आदमी के अन्दर अच्छाई भी रहती है, बुराई भी रहती है। बुराई का प्रकोप बढ़ता है, तब वह रूप बदलकर अच्छाई बनकर आ जाती है। इसे एक्शन-रिएक्शन कहते हैं। बुराई से भलाई बन जाती है, भलाई से बुराई बन जाती है। अगर रावण न होता तो राम न आते। कंस न होता तो कृष्ण न आते। अगर साधक को अच्छी स्थिति मिली है तो इसका श्रेय वह अपनी उन बातों को देता है, जिनके कारण अन्दर से व्याकुलता आई थी और भजन में लगने का अवसर मिला। अब वही बुराई, भलाई बन गई। तो यह संसार ऐसा सूझबूझ का खेल है, कि इसी में अच्छा है, इसी में बुरा है। इसी में शत्रु है, इसी में मित्र है। और वास्तव में न कोई मित्र है न शत्रु। न कोई अच्छा है न बुरा है। न गुण है न अवगुण। तो अवस्था भेद से वही चीज दूसरा रूप ले लेती है। साधना काल में ऐसी अनुभूतियाँ, साधक के अन्दर आती रहती हैं।

अस कहि चला महा अभिमानी। तू न समान सुग्रीवहिं जानी॥

भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥

जब सुग्रीव और बालि युद्ध करने लगे। एक दूसरे को ललकार कर भिड़े, तो एक ही घूसे में बालि ने सुग्रीव को धराशायी कर दिया। फिर यह सुरति ठहर नहीं सकती वहाँ। कर्म के सामने कमजोर पड़ जाती है। संसार की दृष्टि से यह सुरति बड़ी बुजदिल होती है। उधर मार खाकर सुग्रीव राम के पास आता है। तो इसका मतलब है कि जब संसार की ठोकर लगती है, तो फिर भगवान को पकड़ने की याद आती है। भगवान का सहारा मिल गया, तो फिर हिम्मत आई, फिर संघर्ष किया। ऐसे चला करती है उठा-पटक, साधक के अन्तर्जगत में। साधना भी युद्ध ही है।

कर परसा सुग्रीव शरीरा। तन भा कुलिस मिटी सब पीरा॥

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥

साधक की सुरति जब भगवान का स्पर्श पाती है, तो उसमें मजबूती आती है। कर्मों के संस्कार और उधर के संकल्पों से आहत होने की तकलीफ यहाँ पहुँचने पर सब भुला जाती है। शान्ति मिलती है। भगवान के यहाँ जो एडमिट (भरती या प्रविष्ट) हो गया, उसका योग-क्षेम भगवान अपने हाथ में ले लेते हैं। अन्दर से उसे सहारा देने लगते हैं। लेकिन साधक को कितनी भी क्षमता दी जाय वह कमजोर पड़ जाता है। मार खा जाता है। तो जब भी दिक्कत आएगी, तो भगवान से ही रोएगा,

गिड़गिड़ाएगा। अब उसे एक धुरी मिल गई है। उसने अपने मन को भगवान रूपी खूंटे में बांध दिया है। तो अब और कहीं नहीं जायगा। भगवान से ही रोएगा-धोएगा।

अब राम ने सुग्रीव के गले में माला पहना दी, और फिर से भेज दिया लड़ने के लिए। तो समझना चाहिए कि सब कुछ भगवान ही तो कर रहा है। कभी हमारे अन्दर वैराग्य पैदा कर देता है। कभी कमजोरी दे देता है, कहीं हिम्मत पैदा कर देता है। अन्दर बैठे-बैठे वही सब करता रहता है, और निर्लेप भी बना रहता है। सबसे असंग रहता है। उसी की इनर्जी बालि में काम कर रही है, उसी की ताकत सुग्रीव में काम कर रही है। वही ऐसा बन जाता है, वही वैसा बन जाता है। और समझ में किसी के आता नहीं। वही माया बन जाता है, वही संसार बन जाता है। अनेक कलाओं में प्रकट हो जाता है, और देखने वाला भी बन जाता है। और अलग भी रहता है। तो उसको इसलिए अनिर्वचनीय कह दिया जाता है। उसको कहते बताते नहीं बनता। इसलिए नेति-नेति कहते हैं, वेद शास्त्र, ईश्वर के संबंध में। अपने हिसाब से जैसा जिसने समझा, कह डाला। वही गिरगिट वाला किस्सा है-

एक गांव का आदमी बाहर गया खेतों की तरफ घूमने निकला। उसने देखा कि एक पेड़ पर गिरगिट बैठे गरदन हिला रहा था। बहुत बड़ा गिरगिट था। घूमकर लौटा तो बताया कि मैंने आज एक गिरगिट देखा-बहुत बड़ा था। और लाल सुर्ख था। वहाँ खड़ा हुआ, दूसरा आदमी बोला। कल मैं भी उधर से निकला, तो मैंने भी गिरगिट देखा, वह तो एकदम सफेद और बहुत बड़ा था। तीसरे ने कहा-वह काला था। फिर चौथे ने उसे हरा बताया।

तो भाई, यह ऐसा गिरगिट है, कि जो उसे जैसा देख ले, वह वैसा ही बन जाता है। फिर भी वह वैसा है ही नहीं। परमात्मा के विषय में ऐसे-ऐसे दृष्टांत बनाए हैं महात्माओं ने। यह दृष्टि का अन्तर है। अपने-अपने ढंग से लोग उसे देखते हैं-बताते हैं। और वह है अपने ही ढंग का। वही परमात्मा देखने वाले की समझ-भेद से, अन्तःकरण की अवस्था-भेद से, भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है। मोहमय बुद्धि से सब मायामय बन गया था, और जब बोध मुक्त उदार समझ हो गई, तो सब परमात्मा मय हो गया। यह ऐसी अवस्थाएं साधक के अन्दर आती-जाती रहती हैं। वही गोस्वामी जी हैं, एक जगह कहते हैं-

‘गो गोचर जहं लगि मन जाई।

सो सब माया जानेहु भाई।।’

फिर दूसरी अवस्था में दूसरी बात कर देते हैं-

‘सीय राम मय सब जग जानी।’

अपनी अपनी जगह पर दोनों बातें सही हैं। और एक दूसरे से विपरीत भी हैं।

इस तरह से यह सब अन्दर का खेल चलता है।

जब सुग्रीव मार खाकर भागा और राम के पास आ गया। तो राम ने कहा सुग्रीव से कि तुम दोनो भाई एक जैसे हो, इसलिए पहिचान नहीं पाए हम, कि कौन बालि है। तो कर्म दो तरह के हैं-सजातीय और विजातीय। भगवान की भक्ति के क्षेत्र में जो भी पूजा-पाठ, ध्यान-भजन, जप-तप आदि कर्म होते हैं। उनमें जब सुरति लग जाती है तो यह सुग्रीव का प्रतीक है। और जब भजन नहीं करते थे, विजातीय कर्मों में प्रवृत्त रहते थे, उनमें दिनरात सुरति लगी रहती थी। बड़ी प्रीति थी उनमें। तो कर्म के नाते, दोनो एक रूप हैं। सजातीय हो अथवा विजातीय हो, दोनों कर्म ही तो हैं। और दोनो के संकल्पों का संघर्ष होता रहता है, मन के अन्दर। ऐसे तो भगवान में अच्छा बुरा- प्रिय अप्रिय कुछ होता नहीं। लेकिन होता भी है भगवान कहते हैं -

‘समदर्सी मोहिं कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ।।’

तो अब सुग्रीव को माला पहनाकर भेज दिया। जब भगवान का आश्रय ले लिया जाता है, तो भगवान उसकी गारंटी ले लेते हैं। इसलिए भगवान हमें स्वीकार कर ले, हमें माला पहना दे। तब ठीक है। उसके नाम की माला जिस सुकंठ में पड़ गई, उसकी विजय ही विजय है। लगता है यह साधु-समाज में कंठी माला की परंपरा का ऐसा ही कुछ मतलब था। लेकिन अब तो यह एक रूढ़ि बन गई है।

पुनि नाना विधि भई लराई। विटप ओट देखहिं रघुराई॥

दो.- बहु छल बल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि।

मारा बालि राम तब, हृदय मांझ सर तानि॥

इस तरह से बालि का अन्त हुआ। इस (कर्म) से भगवान ही पिंड छुड़ा सकते हैं। अपने पुरुषार्थ के बल पर इसे हराया नहीं जा सकता। सामने वाले का आधा बल यह पहले ही ले लेता है। अपना पुरुषार्थ करके जब सुग्रीव हार गया, मन से हार मान लिया-भगवान का ही सहारा ले लिया, तब भगवान का वाण छूटा। तो यह सब तौर तरीके साधक को समझना चाहिए। साधना के क्षेत्र में समर्पण का निर्भरता का सूत्र सबसे महत्वपूर्ण है। जब बालि मरने लगा, उस समय राम से ऐसा प्रश्न कर दिया कि आपका अवतार तो धर्म की रक्षा के लिए हुआ है, फिर इस तरह से छिपकर मुझे क्यों मारा आपने? तो राम ने क्या उत्तर दिया-

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥

इनहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

मूढ़ तोहिं अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥

मम भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि मूढ़ अभिमानी॥

यहां समाज की नीति बताया है तुलसीदास ने, कि अपने छोटे भाई की पत्नी, अपनी बहन और अपनी वधू और अपनी लड़की इन्हें बुरी निगाह से नहीं देखना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि इन्हें छोड़कर बाकी सबको कुदृष्टि से देखना चाहिए। किसी भी माई-दाई को कुदृष्टि से नहीं देखना चाहिए। यह मानव समाज के लिए नियमावली है। लेकिन क्या बंदरों में ऐसा संभव है ? बंदरों में यह सब रिश्ते-नाते और मर्यादाएं तो होती नहीं। रामायण में बन्दर का मतलब दूसरा है। ऐसे तो माना जाता है कि यह देवता हैं, बानर का रूप धारण करके आए थे-धरती पर-बानर तन धरि-धरि महि, हरिपद सेवहु जाय। ब्रह्मा ने सुरों को आदेश दिया था, राम के आने से पहले। तो फिर यह सब इनका झगड़ा क्या होना चाहिए ? इसलिए इन कथाओं को गम्भीर अर्थों में लेना पड़ेगा। मानस में लेना पड़ेगा।

राम कहा अनुजहिं समुझाई। राज देहु सुग्रीवहिं जाई॥

रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा।

दो.- लछिमन तुरत बोलाए, पुरजन विप्र समाज।

राजु दीन्ह सुग्रीव कहं, अंगद कहं युवराज॥

ये सब मानव समाज के तौर तरीके लिखे गए हैं। बंदरों की कहीं राजधानी नहीं होती, न कोई साम्राज्य होता है। सुग्रीव है सुरति। जब साधक की सुरति ईश्वर में स्थायित्व पा जाती है, तो वह राजा हो जाता है। ईश्वर से भी बड़ा कोई साम्राज्य है क्या ? अनुराग रूपी अंगद, त्याग रूपी तारा, वैराग्य-हनुमान, सब उसकी मदद करते हैं। फिर ब्रह्मज्ञान रूपी बंदरों का समूह इकट्ठा हो जाता है। यम-नियम सब आ जाते हैं। तो ऐसा यह आध्यात्मिक कायदा कानून इसमें सब भरा है। यह रामचरित मानस अध्यात्म विद्या का एक डाकूमेन्ट (दस्तावेज) है। हमारे तुम्हारे सबके लिए, आने वाली जेनरेशन (पीढ़ी) के लिए लिखकर छोड़ गए हैं, गोस्वामी जी। इसका लाभ लेना चाहिए। लेकिन लाभ तो तब मिलेगा, जब इसके रीति-रवैया को ठीक ढंग से समझा जाय। उसके अनुसार चला जाय। और जो जगह-जगह यह लिखा है कि इसके पढ़ने से, सुनने से कल्याण हो जाएगा, तो उसका मतलब यह है कि जब पढ़ेंगे-सुनेंगे समझेंगे, तब तो उस पर अमल करेंगे। बिना पढ़े-सुने जानकारी ही नहीं होगी, तो क्रिया में कैसे लेंगे ? इसलिए खूब पढ़ना चाहिए, खूब सुनना चाहिए, लेकिन

आत्मकल्याण के लिए कुछ करना भी पड़ेगा। इसमें रास्ता बताया गया है, अब उस रास्ते पर चलकर पहुँचो वहां तक।

जब सुग्रीव भवन फिरि आए। राम प्रवर्षण गिरि पर छापे।।

दो.- प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा, राखे रुचिर बनाइ।

राम कृपानिधि कछु दिन, वास करहिंगे आइ।।

साधक की साधना जब उच्च स्तर पर पहुँचती है, और उसकी सुरति मूर्धा में स्थिति प्राप्त कर लेती है। तो उस अवस्था में अन्दर ही अन्दर उसे जिस आनन्द रस की अनुभूति होती है, उसे महात्माओं ने अमृत रस की वर्षा कहा है। ध्यान की गहराई में जब शून्यवत हो जाता है, तब उस अवस्था में एक विशेष प्रकार की शान्ति का जो अलौकिक सुख मिलता है, उसे अमृत रस का बरसना कहते हैं। यह वर्षा जिस अवस्था में होती है, उसी को आध्यात्मिक भाषा में प्रवर्षण पर्वत कहते हैं। प्रवर्षण का मतलब है विशेष रूप से खूब बरसना। अन्दर ही अन्दर आनन्द रस की अनुभूति होती है। मस्ती आ जाती है। उसके प्रभाव से शरीर में भी आभा आ जाती है। साधक जब उस अवस्था में रम जाता है तो इसे कहते हैं-‘राम प्रवर्षण गिरि पर छापे।’

गत ग्रीष्म बरषा रितु आई।’ इस अवस्था में सब संताप मिट जाते हैं। चारों ओर, अन्तर्जगत का वातावरण सुख-शान्ति मय रहता है। यही सब लिखा है यहाँ वर्षा और शरद के वर्णन में।

मंगल रूप भयउ वन तब तैं। कीन्ह निवास रमापति जब तैं।।

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहां दोउ भाई।।

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति-विरति नृपनीति विवेका।।

उस अवस्था में चित्त, निर्विषय होकर शान्त और निर्मल हो जाता है। यही स्फटिक शिला है, जिस पर ज्ञान-विवेक रूप राम-लक्ष्मण विराजमान हो जाते हैं। तो जब सुरति, स्वरूप को पकड़कर उसी में लीन हो जाती है, तब वहां चित्त में कुछ रह नहीं जाता। एक अजीब सी खुमारी जैसी रहती है। अच्छा लगने लगता है। उसी मस्ती के आनन्द में डूबा रहता है। शान्त-निर्मल चित्त रूपी शुभ्र शिला पर बैठकर राम-लक्ष्मण की बातें होती हैं। मतलब है कि ज्ञान और विवेकमय विचार आते हैं-अन्तर्जगत में। ईश्वरीय अनुभूतियाँ आने लगती हैं। साधकों को इस स्थिति तक पहुँचने के लिए किस तरह से, क्या-क्या करना है, यह पूरा का पूरा चार्ट इस कथानक में दिया गया है।

अब सोइ जतन करहु मन लाई। जेहि विधि सीता कै सुधि पाई।

दो- यहि विधि होत बतकही, आए बनर जूथ।

नाना बरन सकल दिसि, देखिअ कीस बरूथ॥

अब बन्दरों की सेना तैयार हो गई। जब यह सुरति ईश्वरीय कर्त्तव्य में लगी, तो फिर साधक के अन्दर तमाम ब्रह्मज्ञान के तत्व जाग्रत हो जाते हैं। यही सब बंदर हैं। सजातीय विचार और भावनाएं साधक के अन्दर भरपूर हो जाती हैं। सब तरफ से अच्छे ही अच्छे भाव और संकल्प मन में उठने लगते हैं। विजातीय विचार दबे रहते हैं। ईश्वरीय विषय की जानकारी, यह जामवंत आ गया। इसके साथ अनेक श्रेष्ठ भावनाएं ये भालू भी आ गए। उधर यम नियम ये नील नल आ गए। ध्यान रूप दधि बल है। अनुराग-अंगद और वैराग्य हनुमान ये पहले से जमे हैं। तो जब साधक अपनी खोई हुई क्षमता के अनुसंधान में लग जाता है। उसे पता है कि वह क्षमता-विजातीय तत्व जो अन्दर प्रसुप्त होकर बैठे हैं, आसक्तिरूपी लंका में-वे चुराए बैठे हैं। ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन असुरों ने उसे छिपाकर अपने पास रख लिया है। मोह रूपी रावण ने उसका अपहरण कर लिया है। उस सीता की खबर लेना है। उसे हासिल कर लेना है। यह काम करना है। तो वह कर्म रूपी बालि जो हमें खाने में, पीने में, विषय में, धन्यों में चारों तरफ भटकाता है, जहां यह मारा गया, तो फिर शक्ति के आने का उपाय शुरू हो जाता है। यह सब साधन प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराया गया है।

साधक जब भजन में प्रगति करता हुआ आगे बढ़ता है, तो भगवान की मदद उसे पग-पग पर मिलने लगती है। देखो, जब बंदर सीता की खोज में परेशान थे। भूखे-प्यासे भटक रहे थे, तो वह तपस्विनी स्वयं प्रभा मिल गई। उसकी मदद से समुद्र के किनारे पहुँचे तो वहां संपाती मिल गया। जब अंगद वगैरह सब थक हार कर बैठ गए, मरने को तैयार हो गए, तब सम्पाती के रूप में अन्तर्जगत से मार्गदर्शन मिल गया।

हम सीता कै सुधि लीन्हे बिना। नहिं जैहैं जुवराज प्रवीना॥

अस कहि लवन सिन्धु तट जाई। बैठे कपि सब दर्म
डसाई॥

इस तरह से अपने लक्ष्य को पाने के लिए निश्चय आना चाहिए। यह अन्दर के विचार हैं, जो यहां बन्दरों की बात हो रही है। सजातीय भावनाएं हैं, जो भजन में लगे

हुए साधक के अन्दर आती हैं। लेकिन लगन सच्ची है अगर, तो अन्दर दृढ़ता आती है, कि अपने लक्ष्य को पाकर ही रहेंगे। मर भले जायं, लेकिन लौटेंगे नहीं। जब ऐसी मजबूती अन्दर से आती है, तब भगवान की मदद किसी न किसी रूप में मिल जाती है, और साधक को लाभ मिल जाता है। अब यहां संपाती के रूप में, साधक के अन्दर ईश्वरीय कर्तव्य में सहयोगी विचारों की मदद मिल गई। अन्तर्जगत से वाणी मिल गई। सम्पाती है क्या? अनुभूतियों की निपुणता में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब है। शब्द भावना उसमें छिपी है। जो तीनों कालों में अबाधित है, एक रस है। वही संपाती है। यह थोड़ा सा सुपर है। वह जो अनुभूतियां, अंतर्जगत की मिलती हैं, उन्हें पाना यह सम्पाती है। और यह श्वास जो है सूर्य है। बड़ी मेहनत की थी साधना काल में, वाक्य ज्ञान में और प्रैक्टिकल में।

‘हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई।

गगन गए रवि निकट उडाई।।’

प्रैक्टिकल में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब सम्पाती का है। और वाक्य ज्ञान में अनुगत जटायु का। ये दोनों साथी हैं। भाई-भाई हैं। श्वास में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब सूर्य का है। तो इसमें बड़ी मेहनत किये, शुरू में, जब साधना किये। तो जटायु तो पहले भाग आया रहा। वाक्य रमणी तो रुक नहीं पायेगा। थोड़ा समझ में आयेगा पहले। साधना में प्रगति नहीं कर पाता। जितना किया, उतने में रह गया। और सम्पाती जो अनुभूतियों को बटोर रहा है, जो विचार आते हैं, अनुभूति होती है। अनुभव के द्वारा जो बताया जाता है, उसे करने के लिए उसने बड़ा संघर्ष किया। तो उसमें क्या हुआ? उसके पंख जल गये। पंख क्यों जल गये? क्योंकि उसके पंख ही तो हैं संसार में विचरण करने के लिये। संसार की जानकारी रूपी-पहिचान रूपी पंख। यह समाप्त हो जाती है, साधक की। जब बहुत आगे प्रवेशिका पा जाता है। बढ़ जाता है। तो पहले असत्य का त्याग कर देता है, और फिर अहं का त्याग कर देता है। क्योंकि जड़ है इसकी- असत्य। पहले हम असत्य को खतम करते हैं। तो जब इनको खतम कर पाये, तो इनकी जगह वो ले, लेते हैं सत्य। तो इसकी जो जानकारी थी, जो ईगो था, कि हम ही हैं करने वाले वह खतम हो गया, जल गया। जल गया तो सही रूप में एडजेस्ट हो गया। अच्छे और बुरे के परे चला गया। यह कंडीसन जब आती है, तो वह सद्गुरु, जो बहुत दिनों से साधना करते-करते, वाक्य ज्ञान की निपुणता में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब मिलते-मिलते, बढ़ते-बढ़ते जो अपने स्वरूप में स्थिर था, और ये पंख जो संसार उन्मुखता रही, वह जल कर भस्म हो गयी। तब उसने सद्गुरु (गाइड) का काम किया।

दो.- “मैं देखूँ तुम नहीं, गीधर्हि दृष्टि अपार ।”

बूढ़ भयउं नतु करतेउं, कछुक सहाय तुम्हार ॥

जो नाघइ सत जोजन सागर ।

करइ सो राम काज मति आगर ॥

तो शरीर धारी जो साधना युक्त सद्गुरु होता है, उसकी दृष्टि अपार होती है। वह सर्वत्र देख सकता है। पहाड़ के उस पार क्या है, पहाड़ उसे रोक नहीं सकता। बता देगा। यह दृष्टि इन दीवारों के पार निकल जाती है। तो इस तरह से उसने कहा कि मैं देख रहा हूँ। सीता बैठी है। तुम नहीं देख सकते। हाँ तुम लोगों में वही बहादुर है, जो समुद्र लांघ कर जाय और पता लगाकर अहंकार रहित होकर परमात्मा के यहां हाजिरी देवे। तो फिर यह जामवंत, यह अन्दर बाहर की जो सब जानकारी है, वह जामवंत - यह बुढ़ा यहां बैठा हुआ है। यह ब्रह्मा का मानस पुत्र है। यह जानकारी आटोमैटिक हर साधक के अन्दर रहती है। और वह बढ़ती चली जाती है। कोई भी सहायता साधना में कहीं से मिलती है, तो वह बढ़ती जाती है। तो फिर यह कहता है, कि हां बताओ भाई, कौन जा सकता है समुद्र के पार-

निज निज बल सब काहू भाषा ।

पार जाइ कर संसय राखा ॥

अंगद कहइ जाउं मैं पारा ।

जिय संसय कछु फिरती बारा ॥

सब बताते हैं-हम इतना जा सकते हैं। ये छोटे-मोटे साधक हैं। लेकिन यह जो पक्का साधक है, अनुराग वह कहता है, मैं पार जा सकता हूँ। यह है अंगद। जब भगवान के प्रेम में कण्ठ गदगद हो जाता है, और अश्रु धारा बहने लगे, वह अनुराग है अंगद। वह सौ योजन समुद्र लांघ सकता है। लेकिन ‘जिय संसय कछु फिरती बारा।’ क्योंकि अनुराग आ जाय तो वह कान्टीन्यू नहीं रह सकता। किसी का आदमी मर जाता है तो वह भी रो-गा कर फिर सिसकी भरने लगेगा, फिर मुंह पिराने लगेगा, फिर टंडा पड़ जायगा। तो यह लगातार नहीं बना रहेगा। और यही अनुराग, ऐसी कोई स्थिति बन जाय कि रोना न पड़े और अनुराग हमारे अन्दर बना रहे, ऐसी इमेन्सीपेशन (अन्तस्प्रेरणा) तैयार की जाय। ऐसी युक्ति हमें मिल जाय, कि वह अवस्था अनुराग की बनी रहे। और रोना न पड़े। यह कंडीशन कैसी होती है ?

वह अवस्था कैसे मिलेगी ? वह अवस्था है, वैराग्य। कान्टीन्यू (निरंतर) अनुराग बना रहे। यह है हनुमान। अनुराग और वैराग्य, अंगद और हनुमान, ये दो योद्धा एक से एक परस्पर हुए हैं। अब यह हनुमान जायेगा और सब चीज का पता लगा लेगा। तो

वैराग्य और अनुराग इनको लाने की जरूरत है। जहां ये आये,तो संयम हो जायेगा-इन इंद्रियों का। संयम रूपी सेतु बन जायेगा। संसार रूपी समुद्र के ऊपर। फिर अन्दर प्रवेशिका मिल जायगी। तो ये राक्षस जितने हैं, इनमें खलबली मच जायेगी। फिर हमारी जीत हो जायगी। तो जो शक्ति हमारी खो गयी है,वापस मिल जायेगी। फिर राम राज्य हो जायेगा। रावण का राज्य हट जायेगा। कल्याण हो जायगा। इस तरह से साधक के मानस में, यह रामचरित मानस की कहानी बनती चली जाती है।

हरि: ओम